

## चार प्रकार के भक्तों की नवीन व्याख्या

सिन्ध प्रान्त के दादू जिले में थले नाम का एक छोटा सा कस्बा है । वहाँ के बहुत बड़े स्थान दरबार साहब में सन्त श्रीकुन्दनदासजी महन्त थे । उनके साथ श्रीभक्तकोकिलजी का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था । श्रीस्वामीजी वर्ष में प्रायः महीने दो महीने वहाँ रहते थे । खूब सत्संग होता भगवर्च्चा होती । बहुत से सन्त वहाँ इकट्ठे होते । वहीं सन्त श्रीटहल्यारामजी भी निवास करते थे । अब श्रीटहल्यारामजी के शिष्य श्रीप्रेमदासजी उस स्थान के महन्त हैं । एक दिन श्रीटहल्यारामजी ने श्रीभक्त-कोकिलजी से प्रश्न किया-“बाबासाहब ! श्रीगीता में प्राण-प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भक्तों के चार भेद जिज्ञासु आर्त, अर्थाथी और ज्ञानी वर्णन किये हैं तथा ज्ञानी को श्रेष्ठ बतलाया है । आप कृपा करके चारों का स्वरूप और ज्ञानी की श्रेष्ठता का कारण बतलाइये ?”

श्रीभक्तकोकिलजी ने कहा-“भाईसाहब ! प्रेम रस में मग्न होकर आनन्दकन्द श्रीब्रजचन्द्र ने प्रेममूर्ति ब्रजवासियों से जो कुछ शिक्षा प्राप्त की थी वह सब उन्होंने अपने प्रिय सखा अर्जुन के सामने प्रकट कर दी । यह तो श्रीकृष्ण का हृदय है, प्रेमा और परा का आनन्द है, मधुर रस से तरातर रसगुल्ला है । इसमें मिठास ही मिठास है, प्रेम ही प्रेम है । श्रीकृष्ण के हृदय में

प्रेम के सिवा और है ही क्या ? अच्छा तो अब सुनो ?

( १ ) आर्तभक्त वह है जो संसार को दुःखमय जानकर सुखरूप प्रभु की ओर व्याकुल और अधीर होकर चलता है ।

( २ ) जब आर्तभक्त के हृदय में प्रियतम से मिलन की प्यास जगती है और वह प्रेमी सन्तों की, प्रियतम से मिलानेवाले सन्तों की प्राप्ति की इच्छा करता है और खोज करता है, सत्संग करते करते सन्त सद्गुरु की प्राप्ति होती है और वह अपना मान एवं सुख छोड़कर सद्गुरु की सेवा में रहकर शुभगुणों को धारण करता है और अपनी मधुर लालसा में सद्गुरु द्वारा बतलाये प्रियतम के मिलन साधन में संलग्न हो जाता है वह जिज्ञासु भक्त है । ये जिज्ञासु भक्त दो धाराओं में बँट जाते हैं । एक रागप्रिय दूसरा वैराग्य प्रिय । जो प्रभु का सुखरूप अर्थ चाहते हैं, वे राग प्रिय अर्थात् प्रिय हैं । जो अपना सुखरूप अर्थ चाहते हैं वे वैराग्य प्रिय अर्थात् प्रिय हैं । पहले अर्थात् अपने लिये निर्वाणमुक्ति अथवा ब्रह्मसुख चाहते हैं, दूसरे अर्थात् अपने सुख की कामना को समूल नष्ट कर देते हैं और सदा युगलसरकार के प्रेम के रंग में रंगकर केवल प्रियतम के सुख की अभिलाषा करते हैं तथा मुक्ति आदि पदार्थों की आकांक्षा को सर्वथा नष्ट कर देते हैं । इस निष्काम एवं तत्सुखी मधुर भक्तिभाव को जिसने सम्पूर्ण रूप में जान लिया है और उसी में तन्मय हो गया है वही सच्चा ज्ञानी भक्त है । वह निष्काम सनेही प्रियतम प्यारे को अपना परम प्रेमास्पद मालूम पड़ता है । प्रभु उस भक्त को नन्हें-नन्हें, भोले-

भाले शिशु के समान अपनी गोद में लेकर चूमते हैं, हृदय से लगाते हैं और सिर सँघते हैं । वह भक्त भक्तिमहारानी की कृपा से प्रियतम की गूढ़-से-गूढ़ लीला, गुण चरित्र, प्रभाव प्रताप, ऐश्वर्य, तत्त्व और रहस्य का ज्ञाता हो जाता है । इसलिये प्रभु उसको ज्ञानी कहते हैं । यह सब जान-बूझकर भी उसकी स्थिति प्रभु के प्रेम में ही रहती है । यह ज्ञानी भक्त प्रारम्भ में शान्त रस में प्रवेश करता है । वह अपने अन्तर में कोटि-कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान रासविलास के अद्भुत आनन्द का दर्शन करता है । वह उस मधुर आनन्द में मग्न होकर सब कुछ भूल जाता है । निर्विकार सत्-चित् रह जाता है, यह शान्तरस है ।

कई भक्त इस आनन्द में डूबे रह जाते हैं और कुछ विरले भक्तों के हृदय में इस महासुख में भी सेवा की लालसा उदय होती है कि इस प्यारी-प्यारी भोरी-भोरी-किशोर-किशोरी युगल-जोड़ी के सान्निध्य में पहुँचकर सेवा करूँ । बस, उसके मन की अभिलाषा जानकर युगलसरकार तत्क्षण उसे अपनी दासी बनाकर सेवा में लगा लेते हैं । तब वह कभी पंखा झलती है, कभी चँवर डुलाती है, कभी युगल के महल में झाड़ू लगाती है, कभी पानी भरती है और युगल को प्यारी, सहचरियों को, अपनी प्रेम पूर्ण सेवा, स्नेहभरी सहृदयता, सद्भाव और सद्गुणों से प्रसन्न करती है । यह दास्यरस है ।

दासी के नम्र आज्ञाकारी, इंगितज्ञ, सौम्य, फूर्तीले और हितैषी शील-स्वभाव को देखकर युगलसरकार प्रसन्न हो जाते हैं

और अनुचरी को सहचरी बना लेते हैं । तब वह सदा-सर्वदा युगल के साथ रहकर उनके सुख के साज सजाती है । उनके मिलाने का यत्न करती है । युगल के परस्पर मान की शान्ति के लिये एक दूसरे का एक दूसरे के पास प्रेम-सन्देश पहुँचाती है, निहोरे करती है, हाहा खाती है, युक्ति बनाकर, झूठ बोलकर अपने धर्म अधर्म की परवाह छोड़कर युगल को मिलाती है । वह उनके खेलने के लिये खुद खिलौने बन जाती है । होरी के दिनों में कभी रंग, कभी पिचकारी, कभी कमोरी और कभी तीनों बनकर युगल को उमंग की भंग से नये-नये रंग में सराबोर करती है । नया चाव, नया जोश, नया आवेश उकसाती है । वह सह-चरी कभी हरिण बनकर युगल के वस्त्र का छोर मुँह में डालकर लाड़ से खींचती है, कभी कोकिल बनकर मधुर-मधुर पंचम स्वर में तान आलापती है, कभी पपीहा बनकर 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' बेलकर मिलने के लिये उत्कण्ठित करती है, कभी हाथ में मधुर मधुमती वीणा लेकर मधुर रंगीली राग-रागनियों का साज समाज उपस्थित कर देती है । तात्पर्य यह, जैसे युगल प्रसन्न हों, सुखी हों, वही खेल खेलती है । युगल के मन में खेलने की इच्छा उदस होने के पूर्व ही जान लेती है और वही साज सजाकर रखती है । यह सख्यरस है ।

यह सुखात्मक अनन्त मधुर प्रेम देखकर युगल उसके वश हो जाते हैं । जिस प्रकार बच्चा निस्संकोच होकर अपनी प्यारी माँ से लाड़ प्यार करता है, वैसे ही युगलसरकार अपनी सह-

चरी के साथ निस्संकोच हो जाते हैं । उस पर पूर्ण विश्वास करके अपने हृदय का सारा हाल कह देते हैं और उसके साथ अटपटी चाल चलते हैं । अब वह सहचरी सहचरी नहीं रहती, परम वात्सल्यमयी बड़ी-बूढ़ी होकर दोनों को सुख पहुँचाती है । युगल उसकी गोदी में बैठकर रस रंग की क्रीड़ा करते हैं । मान करने पर वह समझाती बुझाती है, अधिक हठ करने पर डाँटने-फटकारने में भी नहीं चूकती । जब किसी भूल के कारण मान हो जाता है, जब यही परिस्थिति का स्पष्टीकरण करके मान छुड़ाती है और युगलसरकार को प्रेम के हिंडोले पर सुलाकर झोटे देती रहती है ।